मेरी कविता : मेरे गीत

मेरी कविता : मेरे गीत

(डोगरी कविताएँ)

पद्मा सचदेव

भूमिका
रामधारीसिंह 'दिनकर'



साहित्य अकादेमी, नई दिल्ली

Meri Kavita : Mere Geet—Hindi translation by Padma Sachdev of her own Dogri poems. Sahitya Akademi (1974) price Rs. 7.00

मूल्य : सात रुपए

प्रथम संस्करण : १९७४

मुद्रक :
रूपाभ प्रिंटर्स,
शाहदरा, दिल्ली-३२

दो शब्द

डोगरी को मान्यता देकर साहित्य अकादेमी ने मानो नवरात्रों में वैष्णो माता के कन्या रूप को पूजा है। यदि आज यह कन्या दूसरी भाषाओं की भरी सभा में उठती-बैठती है तो उसका श्रेय भी अधिकतर साहित्य अकादेमी ही को जाता है। किनारी से जड़े लाल डोगरे कुर्ते और गुलबदन की चूड़ीदार सुत्थन पहने, हल्की मांड में अकड़े मलमल के किनारी के बूटों से लदे दुपट्टे का छोर सँभालती यह कन्या दूसरी वयस्क भाषाओं के साथ सद्यप्राप्त गौरव की अनुभूति से अभिभूत हुई जाती है।

साहित्य अकादेमी द्वारा पुरस्कृत पुस्तक की कुछ कविताएँ और कुछ नई कविताएँ ही इस संग्रह में है। अनुवाद करना कठिन काम है। तो भी मैंने यत्न किया है। आशा है गुणीजन मेरी त्रुटियों की ओर ध्यान नहीं देंगे। इसी विश्वास के साथ यह किताब मैं हिन्दी भाषा को सौंप रही हूँ ताकि वह इस कन्या के रूप को ही नही आत्मा को भी पहचान ले।

राष्ट्रकवि श्री रामधारीसिंह 'दिनकर' ने मेरी किताब की भूमिका लिखकर मेरा ही नही, मेरी डोगरी भाषा का भी गौरव बढ़ाया है।

—पद्मा सचदेव

भूमिका

जब से स्वराज्य हुआ है, भारत की भाषाओं में जान आ गई है। जिसमें जहाँ तक बढ़ने का दम है, वह वहाँ तक बढ़ने की कोशिश कर रही है। देश के कुछ बड़े-बूढ़े लोग, जिन्होंने भारत की मिट्टी को न समझा था, जो बड़े-बड़े शहरों में जनमे और वहीं बढ़कर अब वृद्ध हो गए हैं, जिन्होंने अंग्रेजी में दक्षता प्राप्त करके पहले अंग्रेजों को चकित किया और स्वराज्य के बाद से जो नये राजनीतिज्ञोंकोभी चकरा देने में कामयाब हो गए हैं, वे लोग कहते हैं कि भाषाओं का जागरण भारत केलिए सबसे बड़ा खतरा है। लेकिन मुझ-जैसे सिरफिरे, लोग यह समझते है कि भारत की भाषाएँ यदि नहीं जगी तो पार्सल से जो स्वराज्य १५ अगस्त, १९४७ ई० को आया था, वह मुर्दा-का-मुर्दा पड़ा रहेगा। जनता को उसकी भाषा नहीं मिली तो वह बढ़ेगी कैसे ? वह अपने दुख-दर्द, उम्मीद और उमग की अभिव्यक्ति क्या अंग्रेजी की मदद से करेगी ? ऐसे सभी बड़े लोगों से मेरा एक ही सवाल है कि अगर जनता को उसकी भाषा मिलने वाली नहीं थी तो फिर स्वराज्य की ही ऐसी जल्दी क्या थी ! शासन का लिबास तो बदल गया, मगर जनता के हृदय के भीतर उमंग का चिराग जलाने का रास्ता कब खुलेगा ?

अंग्रेजी में कविताएँ लिखकर बहुत-से हिन्दुस्तानियों ने हिन्दुस्तान वालों को चक्कर में डाल दिया; मानो वह कह रहे हों, देखा ! जिस भाषा में तुम ठीक से बात नहीं कर सकते, उसमें हम कविताएँ लिखते है। मगर इन कविताओं को पढा किसने ? जो असली हिन्दुस्तानी हैं, वह अपनी कविताएँ-अपनी भाषाओं में पढ़ते हैं और उन्ही कविताओं पर झूमते भी है। रह गए अंग्रेज, सो वे तो अंग्रेजी में

कविता लिखने वाले हिन्दुस्तानियों को कवि ही नहीं मानते। आरु दत को भी नहीं, तोरु दत को भी नहीं, भारत-कोकिला को भी नहीं, हरीन्द्र चट्टोपाध्याय को भी नहीं। इनमें कोई कवि ऐसा नहीं, जिसकी कविता अंग्रेजी कविताओं के किसी भी प्रतिनिधि संग्रह में स्थान पा सकी हो ? और मेरे सामने 'कामनवेल्थ एन्थालोजी' का नाम मत लीजिए। यह विशेषण ही बताता है कि संग्रह साहित्य नहीं, राजनीति की दृष्टि से किया गया है।

कविता की असली भाषा कवि की मातृभाषा ही हो सकती है। सीखी हुई भाषा मे ज्ञान का साहित्य लिखा जा सकता है, रस का साहित्य नहीं लिखा जा सकता। और रस साहित्य मे भी कविता और गीत के बीच भेद है। कविता मे कुछ ज्ञान भी होता है, पाण्डित्य भी होता है, मगर गीत केवल रस की बूँद है, कवि के भीतरी व्यक्तित्व के प्रस्वेद है, उसके दर्द की खुशबू है। उनके लिए ज्ञान और पाण्डित्य साधक नहीं, बाधक ही होते है। :

इश्क को दिल में जगह दे 'अकबर',
इल्म से शायरी नहीं आती।

कभी सोचा है कि संस्कृत मे गीत क्यों नहीं लिखे गए ? संस्कृत का चलन कई हजार साल तक रहा, फिर भी जयदेव को छोड़कर और कोई कवि संस्कृत में नहीं हुआ, जिसे हम गीतकार कह सकें। कारण स्पष्ट है। संस्कृत कभी भी मातृभाषा नहीं थी। मातृभाषा बराबर कोई-न-कोई प्राकृत रही थी। संस्कृत पर अधिकार सहज मे प्राप्त नहीं होता था, वह प्राप्त किया जाता था।

'गाथा सप्तशती' प्राकृत मे जनमी; क्योंकि उसके भीतर पाण्डित्य नहीं, जन-साधारण के हृदय की भावनाएँ है। और गोवर्धनाचार्य जब गाथा की देखा-देखी संस्कृत में 'आर्या सप्तशती' लिखने लगे, तब उन्हें अनुभव हुआ, मानो वे नीचे बहने वाले जल को नल के द्वारा ऊपर चढ़ा रहे हैं।

और जो हाल संस्कृत का हुआ, वही हाल हिन्दी का रहा है। हिन्दी मे कविताएँ अत्यन्त उच्चकोटि की लिखी जाती हैं, मगर असली गीत हिन्दी या उर्दू मे नहीं लिखा जा सकता। यहाँ तक कि सिनेमा ने भी यह साबित कर दिया है कि उप-भाषाओं अथवा जनपदीय भाषाओं का सहारा लिये बिना सच्चे गीत लिखे ही नहीं

जा सकते और चूंकि सिनेमा वाले लोग उर्दूपरस्त है, इसलिए जनपदीय भाषाओं से रस लेना ही वे नही जानते। जैसे सस्कृत प्राकृत से आगे बढ जाने के कारण गीतो की भाषा नही रही, वैसे ही गीतों की भाषा हिन्दी क्षेत्रों मे भी हिन्दी नहीं डोगरी, पजाबी, ब्रजभाषा, अवधी, बुन्देलखंडी, भोजपुरी, मैथिली और अंगिका रह गई है।

और डोगरी के गीत कितने विलक्षण होते है यह देखकर आजकल मैं दंग हूँ। डोगरी की सहज कवयित्री श्रीमती पद्मा सचदेव का मैं बड़ा ही उपकार मानता हूँ कि जिन्होंने मेरे घर आकर मुझे उस अद्भुत आध्यात्मिक सपत्ति का ज्ञान कराया जो डोगरी भाषा में बिखरी पड़ी है।

कविता मे आजकल ज्ञान का युग चल रहा है यानी कविता मर गई है, उसकी लाश पर बड़े-बड़े पंडित कलाकार कारीगरी और नक्काशी करके नोबल पुरस्कार पाते हैं और हम जब उनकी शौहरत से खिचकर उनकी कविताएँ पढ़ने लगते है, तब हमारा मोह भंग हो जाता है।

पद्मा जी ने डोगरी के लोक-गीतो के सिवा कुछ अपनी कविताएँ भी मुझे सुनाईं और उन्हे सुनकर मुझे लगा, मैं अपनी कलम फेंक दूं, वही अच्छा है। क्योंकि जो बात पद्मा कहती है, वह असली कविता है। हममे से हर कवि उस कविता से दूर, बहुत दूर हो गया है :

> यहाँ देखो सरसों फूली बैठी है,
> न जाने, किसके भुलावे में आ गई है।
> दूर तक खिलखिला रही है,
> मानो ब्रह्मा की अँजुरी से बिखर गई हो।
> किसकी याद में यह गोरी
> पीली होती जा रही है।
> इसके बीज कहाँ बिखरे हैं,
> जम्मू, चबे, और अखनूर में।
> मन करता है, सारी बांध लूँ,
> केसर और कँटीली झाड़ियाँ समेट लूं।

गाथा को आर्या बनाने में जो मुसीबत गोवर्धन को झेलनी पड़ी थी, डोगरी को हिन्दी में ढालने वालों की मुसीबत उससे जरा भी कम नहीं है। फिर भी जी करता है कि पद्मा के गीतों या कविताओं के कुछ और अनुवाद पाठकों के सामने बानगी के तौर पर जरूर परोस दूँ :

क्या ये राजाओं के महल आपके हैं ?
मेरा घर मुझसे छूट चुका है,
मैं राह भूल गई हूँ।
बरसों पहले मेरी आँखों की ज्योति,
मुझसे छिन चुकी है।
यह ज्योति छीन जिन्होंने,
मुझे अन्धी बनाकर फेंक दिया है।
मेरे बाग का पौधा जिन्होंने उखाड़ लिया है।
उस पौधे पर अभी कोंपलें भी नहीं आई थीं।
मेरा साजन तब तक ज्यादा दूर भी नहीं गया होगा,
तभी जिन्होंने मेरी कांपती टहनियां काट लीं,
क्या ये दरांतियां आपकी हैं ?
मेरा चांद बेर के दरख्त के पीछे चढ़ा है।
यह दरख्त कटवा दो जिससे मेरा चांद मुँह खोलकर बोले।

टेसू के ये लाल-लाल फूल,
मानो विधाता ने अपने हाथ से छुए हैं :

पहाड़ के पीछे से चांद हँसता हुआ
धीरे-धीरे ऐसे उगता है,
जैसे नई दुलहिन मुँह दिखाने के लिए,
धीरे-धीरे घूँघट उठा रही हो।

यह वासन्ती चाँद, इसका अंग-अंग पीला है,

किसी के वियोग में सूखकर काँटा हो गया है।

या हो सकता है, तपेदिक ने इसका ऐसा हाल किया हो।

कवयित्री पद्मा को तपेदिक हुआ था और वे तीन वर्ष तक जिंदगी और मौत के बीच झूले झूलती रही थीं। अपनी एक कविता में अपनी बीमारी का हाल भी उन्होंने लिखा है, मानो किसी को वे चिट्ठी लिख रही हों :

मैं बहुत दिनों से बीमार थी,

चारपाई से लगी हुई थी।

घुप्प अँधेरे में सोते-सोते,

सुध-बुध खो बैठी थी।

असली कविता शायद कोरी घटनाएँ हैं, मगर धन्य वह आदमी है जो घटनाओं का रस, इतिहास का सत जगा सकता है। सच्ची कविता शायद नारियों के लिए अधिक स्वाभाविक है, क्योंकि वे चुपचाप अन्याय सहकर इतिहास के सत का रक्षण करती हैं :

इस राह में इतनी सुनसान है,

कि कोई पत्ता भी नहीं हिलता।

कहार जब तेजी से कदम उठाते हैं,

तो मेरा मन काँप-काँप जाता है।

इस अँधेरे में मैं,

वह हाथ ढूँढ़ रही हूँ

जो फेरों के समय मेरे हाथ में था।

वे शब्द ढूँढ रही हूँ जो

आहुतियों के संग बोले गए थे।

पद्मा का जीवन दु:ख से भीगा हुआ जीवन है। मृत्यु की सीमा पर वह तीन साल सोई रही थी। जो दु:खी होता है, उसे गुजरे हुए सुखों की याद कुछ ज्यादा सताती है :

सखि ! वे दिन कैसे थे, वह वक्त कैसा वक्त था ?
जब कड़वी बात किसी को न कही थी, न सुनी थी।
वे दिन कितने मीठे थे,
जब सब-कुछ सुन्दर दिखाई देता था।
घाव कभी होता न था, होता भी था तो भट भर जाता था।
अब ये कैसे घाव लगे हैं ? इनका मरहम नहीं मिलता,
इनका रिसना बन्द नहीं होता, इनका दर्द खाये जाता है।

यह बीमारी केवल पद्मा जी की नहीं है। जिसका बचपन बीत गया, जो बच्चे की तरह सीधी बात बोलने में शर्म महसूस करता है, उस हर आदमी का यही हाल है। मेरा खयाल है, पूरी सभ्यता का ही बचपन समाप्त हो गया है और वह इसी वयस्कता की बीमारी से बीमार है।

डोगरी धन्य है। न जाने, इस भाषा के भीतर कैसे-कैसे रत्न छिपे हुए हैं। डोगरी के लोक-गीतों के अनुवाद हिन्दी में अवश्य आने चाहिएँ और हिन्दी को उन सभी कवियों और लेखकों से परिचित कराना चाहिए जो इस पहाड़ की तरह खूबसूरत भाषा में लिख रहे हैं।

—रामधारीसिंह 'दिनकर'

कविता-क्रम

भादों

भादों ने गुस्से में आकर जब खिड़कियाँ तोड़ी
तब मुझे यों लगा, जैसे कोई आया है।

सावन की बौछारें भरी दुपहरी में चलकर आई
मिट्टी की पूरी दीवार गीली हो गई
दीवार पर पुता मकोल (सफ़ेद मिट्टी) रो उठा
बाहिर घड़ियाली (घड़ा रखने का ऊँचा स्थान) भी सीलन से भर उठी
बादल ने जब दीवार पर बनी लकीरें मिटा दीं
तब मुझे यों लगा जैसे कोई आया है।

बादल ने बेशुमार रंग बदले
कहीं सात रंगों वाली पेंग कहीं घनी बदली
मेरा ये दालान कभी चाँदनी से भर उठा, कभी अँधेरे से
बाहर कच्ची रसोई की मिट्टी जरा जरा गिरती रही

कहीं कुँआरी आशाओं की उन्मुक्त हँसी बिखर गई
तब मुझे यों लगा जैसे कोई आया है

ऊपर के चौगान में जोर की बौछार पड़ी
मेरे घर के शहतीरों का कोमल मन डर से काँप उठा
हवा के डर से कहीं आम की टहनियाँ और बेरी के दरख्त
जोर-जोर से आहें भरने लगे
निढाल और चूर हुई कूंजें एकाएक उड़ी
तब मुझे यों लगा जैसे कोई आया है।

छोटे-छोटे पत्तों में ठंड उतर आई
मुए थर-थर काँपते हुए नीले हो गए
मानो माँ ने बाँह से पकड़कर ज़बरदस्ती नहलाया हो
और नहाने से सुन्दरता को और रूप चढ गया
बेलों से जब वृक्षों ने कलियाँ उधार माँगीं
तब मुझे यों लगा जैसे कोई आया है।

बारिश के जोर-जोर से दौड़ने की आवाज़ के सिवा सब सूना है
कोई और आवाज सुनाई नहीं पड़ती मानो सृष्टि सो रही है
टप-टप-टप किसी सवार के घोड़े की टापों की आवाज है क्या ?
ओह ये तो ऊपर के दालान से कोई पड़छत्ती चू रही है
मेरी तरह अपने-आपसे जब उसने बातें की
तब मुझे यों लगा जैसे कोई आया है।

वारिश के वाद आसमान निखर आया
पक्षी पंक्तिवद्ध होकर उड़े ।
ड्योढ़ी की दहलीज से जब एड़ियाँ उठाकर दूर देखती हूँ
तो पहाड़ों के ऊपर से होकर दूर तक जाते बादल दिखाई देते है
धूप ने परदेसियों के लिए जब गलियाँ सँवार दी
तब मुझे यों लगा जैसे कोई श्राया है ।

सखि वे दिन कैसे थे !

सखि ! वे दिन कैसे थे, वह वक्त कैसा वक्त था
जब कड़वी बात न किसी को कही थी न सुनी थी
चिन्ता चिता के समान न थी चिन्ता के विषय में कुछ पता न था
वे दिन कितने मीठे थे, सभी कुछ सुन्दर दिखाई देता था
घाव कभी होता ही न था, होता भी था तो झट भर जाता था
अब ये कैसे घाव लगे है, इनका मरहम नही मिलता
इनका रिसना बन्द नही होता, इनका दर्द खाए जाता है
सखि वे दिन कैसे थे !

स्वप्न में सारे आकाश की परिक्रमा ले लिया करते थे
रात, अपने सौन्दर्य से छल जाती थी, दिन भी बड़े लुभावने थे
धरती छोटी-सी लगती थी, रोज ही पूरी नाप लेते थे
आकाश एक पतंग जितना था उसकी डोर बड़ी लंबी बनवाते थे
वृक्षों के सिरे पर चढकर कितने ही पत्ते नीचे गिराए थे

तब बटवारा कितना सच्चा था, प्यार के रंग कितने गाढ़े थे
सखि वे दिन कैसे दिन थे !

वे दिन इतने खाली न थे जिन्दगी इतनी भारी न थी
दिन अपने परवश न थे, रात पर किसी का अधिकार न था
चट्टानों पर भी नींद आकर मीठी लोरी सुनाती थी
सेन्थे (पौधा) की कलियाँ झुमके थे, कोई भी लकीर बिन्दी थी
अपना सौन्दर्य अनोखा था बावड़ी में से झाँककर देखते थे
आँखों में सुरमा डालने का ढंग चोरी-चोरी सीखते थे
सखि वे दिन कैसे दिन थे !

वे दिन कितने छोटे दिन थे चाँद और सूरज में साँझ थी
हर गुड़िया इक सुन्दर हीर थी, हर मनुष्य राँझा था
बड़े होने की एक आशा जगह-जगह छल जाती थी
हर आशा उम्र के संग बड़ी होकर उसकी तरह जवान होती जाती थी
विधाता की वह सुन्दर छलना आज भी याद आती है
बचपन में परवान चढ़ा हर महल मुँडेर गिरता लगता है
सखि वे दिन कैसे दिन थे !

बरछी बनकर वे यादें कलेजे में धँस रही हैं
दिन और रात बौराए हुए हैं, समय डंक मार रहा है
अब न वह बसन्त आयगा, न ही वह गुलाबी वैसाखी
इस जन्म में वह उम्र अब मेरे घर कभी नहीं आएगी

सफर के शुरू में विधाता क्या रंग दिखाता है
बचपन के कोमल दिनों में क्या-क्या खेल खिलाता है
सखि वे दिन कैसे थे
वह वक्त कैसा था !

काश

जो मैं किसी अँधेरे वन के
एक कोने में भुर्जी होती
जो मैं उतनी धरती होती
जितनी पर प्रियतम तुम चलते
घास बनूँ उग जाऊँ तेरे सारे जूठे बरतन मल दूँ
मार-पीटकर कोई मानव
मुझे बनाए कागज़ कोरा
हाथों से मुझको थामे तुम
गहरी सोच मुझी पर लिखते
मेरी कामना पूरी होती
मेरा प्यार मुझे मिल जाता

किसी कपास के पौधे की मैं कली जो होती
कोई मेरे-जैसी चरखा

कात-कातकर कपड़ा बुनती
कोई दर्जी कुरता सीकर
भरे बाजार में बोली देता
दो धागों की मिन्नत सुनकर
तुम अनजाने में ले लेते
पता तुम्हें कुछ भी न चलता
तेरे अंग संग मैं रहती
मेरी कामना पूरी होती
मेरा प्यार मुझे मिल जाता

किसी पहाड़ी वन प्रदेश में
जो मैं इक झरना ही होती
सखियों को लेकर संग अपने
गाती-गाती आगे बढ़ती
पत्तों और पत्थर के ऊपर
लगा छलाँगें खोह लाँघती
तुम राही होते रस्ते के
दो घूँटों में होंठ छुआते
ठंडी-ठंडी हवा मैं बनकर
तेरे बालों को सहलाती
मेरी कामना पूरी होती
मेरा प्यार मुझे मिल जाता

मन करता है

टेसू के ये लाल-लाल फूल
मानो विधाता ने अपने हाथ से छुए हैं
काली टहनियों में सज रहे ये फूल
न बोलते हैं न हामी भरते हैं
एक सुन्दर दुपट्टा रँगकर
मैं इसके ऊपर फैला दूँ
रँग केसरी चढ़ाऊँ
आसमान का पर्दा फाड़कर ले आऊँ
फिर मैं कहीं दूर उड़ जाऊँ
जम्मू, चंबा या अखनूर में
मन करता है ये दिन बाँध लूँ
ये पल ये क्षण समेट लूँ

' चंपा फूल पहाड़ी पर बसता है

तभी तो मंद-मंद मुस्का रहा है
हवा के संग दौड़ रहा है
अपनी सुगन्ध बिखेरता जाता है
कहीं गोरी के केशों में सजा हुआ है
लवे वालों में बंध गया है
परदेस में ये कब तक रहे
मेरे वालों के साथ कब तक लिपटा रहे
इसकी हँसी कहीं दूर है
जम्मू, चवे, अखनूर में
मन करता है पहाड़ बांध लूं
ये सुन्दर चेहरे सहेज लूं

यहाँ देखो सरसों फूली बैठी है
न जाने किसके भुलावे में आ गई है
दूर तक खिलखिला रही है
मानो ब्रह्मा की अँजुरी से बिखर गई हो
वृक्षों की छाया में लेटी ये सरसों
अपने ही बोझ से दोहरी होती जा रही है
किसकी याद में ये गोरी पीली होती जा रही है
इसके बीज कहीं बिखरे हैं
जम्मू, चंवे और अखनूर में
मन करता है सारी बांध लूं
केसर और कँटीली झाड़ियाँ समेट लूं

पहाड़ियों ने औरतों की तरह सजकर
चारों तरफ घेरा डाला हुआ है
गोदी में बस्तियाँ बसी है
मानो सृष्टि ने पड़ाव डाला है
झरने प्रसन्नता में सराबोर हैं
दूर से ही छलाँगें लगाते आ रहे हैं
छोटे-छोटे बच्चे रेवड़ के रेवड़
पशु चरा रहे हैं
मेमनों का एक रेवड़ घूम रहा है
जम्मू, चंबा और अखनूर में
मन करता है उड़ती कूँजों की उड़ान बाँध लूँ
पहाड़ की आवाज आत्मसात कर लूँ

आप क्या जानें

मेरे देश का सौन्दर्य आपने न देखा न सुना
मेरे मन की व्यथा आप क्या समझेंगे
मेरे मन की आशा को आप क्या जानेंगे

पुरमंडल की हवा कहीं पर
लोरियाँ गाती आपने तो नहीं देखी
पहाड़ियों की चोटियों से खेलती किलोल करती
आपने तो नहीं देखी
सावन में एकाएक घिर आए बादल
आपने कहाँ देखे हैं
निर्मल जल वाले सरोवर
और उनमें नहाये कमल आपने नहीं देखे
चंपा की कलियाँ भी आपने
कभी ध्यान से नहीं देखीं

कहीं खड़े होकर मोतियों की सुगन्धि
आपने हर साँस के साथ नहीं पी
चमेली की अमर हँसी न आपने देखी न सुनी
मेरी व्यथा आप क्या समझें

किसी पहाड़ी की चोटी पर लेटकर
आपने आकाश से बातें नहीं कीं
चाँद और चाँदनी की उस हँसी से भी
आपका सामना न हुआ
जो ठंडी बरफ़ की हँसी से
चिनार के वृक्षों तक उतरती है
जो चन्द्रभागा की तेज रवानी में है (चिनाब)
जो वितस्ता के किनारों में है (झेलम)
जो भील में हिल रही परछाइयों की छाँह में है
भरे खेत के बीच नाचती गोरी की बाँह में पहने
मरीदे (एक डोगरी गहना) की झंकार न आपने देखी न सुनी
मेरी व्यथा आप क्या समझें।

पहाड़ियों से घिरे रँगीले शहर
गाँव आपने नहीं देखे
घर के अन्दर और बाहर
सजे हुए पल-क्षण-पहर नही देखे
पहाड़ियों की चोटियों से निकलता धुआँ
आपने नहीं देखा

घूंघट में से झाँकती हैरान हुई गोरी का मुँह
भी आपने नही देखा
ढक्की और पहाड़ी पर कभी आपने
सँभल सँभल कर चलकर नहीं देखा
किसी बेर के दरख्त की सबसे ऊँची
टहनी पर खड़े होकर
आपने डोरी नहीं लूटी
मेरी व्यथा आप क्या समझें

बड़ी मुहब्बत से बोबो (दीदी) कहते बच्चे
आपने कहाँ देखे हैं
मेरी आँखों से पहाड़ी पर चढते
मेमने भी आप न देख सके
क्या आपने पहाड़ी चश्मों का जल
ओक से पीकर देखा है
या पहाड़ों की आहों का दर्द जानने का
यत्न किया है
किसी की प्रतीक्षा में आपने
बकरों की बलि देने की मिन्नत नहीं मानी
आपने ड्योढी और दालान में साँफी डाल-
कर भी नहीं देखा,
साँय-साँय करती सोच में डूबी हुई चीड़
क्या आपने देखा है ?
मेरी व्यथा क्या आप समझें

मेरी आवाज़ डूब गई

इस मुल्क के शोर में
कही पहुँचने की जल्दी में
मेरा हर गीत डूब गया
मेरी आवाज डूब गई

कहीं खुले चौगानों में, कही कच्चे मकानों में
किसी जगल में किसी बाग या वीराने में
किसी ने पहाड़ के पीछे से मुझे आवाज न दी
कोई मेला नही जमा
कोई माली प्रतियोगिता (बाज़ी) न जीत सका
मेरी वह गठरी खुल गई
मेरी सौगात बिखर गई
मेरा विश्वास डूब गया
मेरी आवाज डूब गई

वड़ी पीली मटमैली, बीमारी से सकुचाई हुई
किसी उलझन में उलझी-सी, किसी ताने से भरी हुई
इस जिन्दगी में न नई कोंपलें आई, न इसके पत्ते ही गिरे
न कीलें बाहर निकलीं, न काँटे ठीक तरह से पार हुए
इन दरख्तों के साए में
सदियों के आवागमन में
मेरा घर-बाहर डूब गया
मेरी आवाज़ डूब गई

किसी झरने की रेत फिर मेरी आँख में चुभने लगी है
परिन्दे-जैसा यह चंचल मन बड़ी उम्मीद से तड़प रहा है
यादों के बसेरे बड़े बोझिल हैं,
कहीं से बच्चे की हँसी की आवाज आई है
कहीं इस भारी जीवन के लिए कितनी आशा है सान्त्वना है !
कहीं तवी की बाढ़ में
कहीं रावी के बहाव में
मेरी पाजेब खुल गई
मेरी आवाज डूब गई

चीड़ देवदार और चिनार के वृक्ष आँखों के आगे घूम रहे हैं
उन वृक्षों उन जंगलों की हवा तक यहाँ नहीं आती
इन छलावों में, मेरी खुली हुई बाँहों में
मेरी धरती मेरे इन कमजोर दावों में नहीं आती
किसी पठार पर बनी देहरी में

भरे मेले की अँधेरों में
मेरी हर साँस घुट गई
मेरी आवाज़ डूब गई

मेरे वतन तेरी मिट्टी की सोंधी महक मेरे तक नहीं पहुँचती
मुझे मेरी ही धरती की कोई तरकीब नही सूझती
मैं उन सरसब्ज़ बहारों को नहीं भूल सकती
उन दहकते अंगारों की मुझे याद नहीं आती
मौत के काले अँधेरे में
कभी खत्म न होने वाली राहों में
मेरा आज फिर कुछ खो गया
मेरी आवाज डूब गई

देस-निकाला

कौन कहता है मुझे देस-निकाला नहीं मिला
मेरा सालू फटा हुआ है इसे कैसे ग्रोढ़ूँ
कुए में से पानी कैसे निकालूँ, मवेशी कैसे चराऊँ
मेरे सालू में कुछ सुराख हैं
इनमें से कुछ बड़े हैं कुछ छोटे हैं
सब मेरे मैके की स्मृतियाँ हैं
सहेलियों की और छोटे भाई की
जिन्होंने मुझे रोते-रोते डोली में डाल दिया था
बेटी अपने घर जा, ये गीत जिन्होंने गाया था
ससुराल में जीना क्या सहज है
कौन कहता है……

मिन्जरों का त्योहार आया है, वे यादें फिर ताजी हो गईं
मैं एकटक देख रही हूँ, आँसू नही आ रहे

मैं अकेली 'राड़े' कहाँ सजाऊँ
नवरात्रों में अकेली नहाने कैसे जाऊँ
ऊँची आवाज़ में गाकर माता (वैष्णो) के छंद किसे सुनाऊँ
आज कान्हा और गोपी किसे बनाऊँ
संग साथी और अपनी गली सब बिदेस हो गया
मेरे बाबुल मैं परदेसिन क्यों हुई
न वह गर्मी का मौसम है न सर्दी का
कौन कहता है······

सावन-भादों किसी चौगान में बरस रहे है
किसी मैदान में पहाड़ियाँ झुक रही हैं
बरसात की पहली बाढ़ लहू-लुहान है
ये आकाश मुझे खूनी दिखाई देता है
मेरे गाँव में भी पहली बाढ़ आई होगी
सब लड़कियाँ एक स्थान पर इकट्ठी हो गई होंगी
मेरी माँ, कोई ताल में छलाँगें लगा रहा है
जगह-जगह मेरी आँखों को कुछ दिखाई देता है
मुझे कोई भी बुलाता नहीं है
कौन कहता है······

मेरी आँखों की बाढ़ गली-गली में गई है
जम्मू की तवी नदी में जाकर मिल गई है
मेरी माँ की आँख दालान में लगी होगी
जगह-जगह मेरी सखियों को आशा ठगती होगी

मेरी माँ ! बेटियों को पैदा होते ही तो मार नहीं दिया
फिर ससुराल भेजकर क्यों बिसार दिया
कोई मेरी कुशल-क्षेम पूछ रहा है
मेरा घर कहाँ है कौन गाँव में है
रास्ते में कोई नदी-नाला तो नहीं पड़ता
कौन कहता है……

मेरे लगाए हुए वृक्ष जवान हो गए होंगे
लवे ऊँचे आकाश छूते होंगे
मेरे आम के वृक्ष को इस बार बौर तो पड़ा होगा
किसने सोचा था मैं दूर रहूँगी
मेरी माँ मुझे चंपा और मोतिया की सुगन्ध भेज
मेरी जान सूली पर टँगी हुई है
मन दर-ब-दर भटक रहा है
दूर-दूर कही पहाड़ों की उपत्यकाओं में
घर की याद क्या किसी को बताई जा सकती है
कौन-कहता है……

मेरी आँखें अन्दर धँसी हुई हैं, मुँह पीला है
मेरी माँ मेरी माँग निकालकर बाल संवार दो
मैं टूटे हुए टुकड़े जोड़ रही हूँ
जख्म कच्चे हैं छिलके उतारती हूँ
हर गली-बाजार बेगाना हो गया है
दाना-दाना अपरिचित है

नींद में मुझे कोई आवाजें लगाता है
कौड़ियों से भरी अंजुलि कोई मेरे सिर से न्योछावर करता है
कोई भी टहनी नीची नहीं हुई
कौन कहता है……

पुरवाई पेंग बढ़ाती हुई आती है
पक्षियों की कतारों की कतारें आ रही हैं
तोते तुम उड़ो, तुम्हें मैं गले से लगा लूं
चूरी बनाकर तुम्हें खिलाऊँ
मेरे मैके की हवा तुम्हें थपकियाँ देकर सुलाती है
ठंडी रातों में चाँद तुमसे बातें करता है
डोगरा देश में पहाड़ियाँ भी बोलती हैं
मेंहदी लगाती हैं, झरनों में पाँव धोती हैं
जहाँ किसी का मन भी काला नहीं है
कौन कहता है……

अब पराये अपने हो गए हैं
अपरिचित गले से लगा लिए हैं
सखि मन रोता है, पर हँसना है
याद आये तो किसे जाकर बतायें
लज्जा ने मुझे रोक रखा है
कहीं पर ठंडी फुहार पड़ने लगती है

मन की गाँठ खुलती लगती है
सारी सृष्टि को मैं भूल जाता हूँ
मन को बूझने वाला कोई नहीं है
कौन कहता है……

डोली

अँधेरा पहाड़ी के ऊपर सहम-सहम कर चढ रहा है
पर्वतों की चोटियों पर चाँद का प्रकाश छन-छन कर आ रहा है
पहरा देते वृक्ष सुबह होने की प्रतीक्षा में हैं
इस जगह का सुनसान वातावरण किसी आशा में स्तब्ध है
हाथ को हाथ नहीं सुझाई देता, कान में कोई आवाज नहीं पड़ती
क्या रानी क्या दासी सभी साँस रोके प्रतीक्षा में हैं
पहाड़ के पीछे से चाँद हँसता हुआ धीरे-धीरे ऐसे उगता है
जैसे नई दुलहिन मुंह दिखाने के लिए धीरे-धीरे घूंघट उठा रही हो
यह वासन्ती चाँद इसका अँग-अँग पीला है
किसी के वियोग में सूखकर काँटा हो गया है
या हो सकता है तपेदिक ने इसका ऐसा हाल किया हो
किसी का दिया हुआ शाप प्रत्यक्ष फल रहा है
जैसे जल्दी में कहार मेरी डोली लेकर दौड़ते हैं
वैसी ही जल्दी में ये भी सँग-सँग चलता है

इस राह में इतनी सुनसान है
कि कोई पत्ता तक नहीं हिलता
कहार जब तेजी से कदम उठाते हैं
तो मेरा मन काँप-काँप जाता है
इस अँधेरे में मैं वह हाथ ढूंढ़ रही हूँ
जो फेरों के समय मेरे हाथ में था
वह शब्द ढूंढ़ रही हूँ
जो आहुतियों के संग बोले गए थे
मैं वह गठबंधन ढूंढ रही हूँ
जो इस जीवन के साथ निभना है
मैं वह कहानी ढूंढ़ रही हूँ
जिसे यह कलम लिखेगी

घर कैसे जाऊँ

आज मैं घर कैसे जाऊँ
रास्ते में बहते झरने को क्या जवाब दूँ
प्रतीक्षा करती वाटिका का मन कैसे बहलाऊँ
गाय के बछड़े को बहलाने के लिए
हरी दूब जंगल में लाने कौन जाएगा
वह दूब जिसके गले में ओस लगी है
मैं सलाह किसके सँग करूँगी, मेरा सारा चाव कौन ले गया
यादों के पिटारे में कौन सुहाग बन्द कर गया
रास्ते में झरने पर पड़ी पुल का काम देती
देवदार की लकड़ी कौन उठा गया
आज मैं घर कैसे जाऊँ

कौन सिर पर हाथ फेरकर मेरी थकान मिटाएगा
मेरी तरफ हँसते हुए देख-देखकर बछड़े को घास कौन खिलाएगा

जहाँ अब सासजी का राज्य है, वहाँ जाकर क्या करूँ
मेरी आवाज बैठ चुकी है, साज टूट गया है
बिखरे बालों से पुँछकर लाल बिन्दी मिट गई है
मेंहदी लगे पाँव में छाले उभर आए हैं
जहाँ गोरी का मुँह पीला हो गया है
उस घर में कैसे जाऊँ
आज मैं घर कैसे जाऊँ

जहाँ तनी हुई भृकुटियों का राज्य है
कहाँ आज के तौले हुए सवाल और वह मीठी आवाज
कहाँ चटाई और आसन पर प्रतीक्षा करती आँखें
कहाँ वह मुख की घड़ियाँ कहाँ ये बेचैनी
कहाँ दीवारों में बैठने का स्थान, और खाली आँगन भून-भूनकर रह
कौन जाने कहाँ कूड़ा पड़ा है, कहाँ बुहारना है
आज मैं घर कैसे जाऊँ

ये लम्बे-लम्बे बाल किसे दिखाने के लिए सहेजूँ
किसको देखकर मेरी चाल अब आहिस्ता हो जाया करेगी
दही बिलोते समय मथानी और चूड़ियों का शोर सुन
अकेले उदास देखकर कौन पास आ बैठेगा
कोई खेत में हो तो भी मानो परदेस में ही है
यही सब सोचते यह छोटी उम्र कैसे कटेगी
काम गलत हो जाए तो ननद जी गँवार कहती हैं
आज घर कैसे जाऊँ

यहाँ संतरों का बाग है, और जवान झरने फूट रहे हैं
यहाँ तक मैं साजन को विदा करने आई हूँ
सिपाही का वेष धरकर घोड़ी को एड़ी लगाकर
परदेसी कहीं दूर चला गया
एक छीमक खाकर घोड़ी धूल की तरह उड़ गई
मैंने अपना हार खोल दिया चटाई समेट ली
मन कहाँ फँस गया
न इस पार, न उस पार
मैं अब घर कैसे जाऊँ

मेरे बच्चे का ये कुर्ता

मेरे बच्चे का ये कुर्ता, ये पाजामा, ये टोपी
लिहाफ सिरहाना सुन्दर रजाई और ढीला-सा कोट
उनकी तंबाकू की टोपी का ये कपड़ा ये झाड़न ये धोती
बापू का मटियाला जिस्म जिसकी कमर में लँगोटी लिपटी है
पीढ़ा, पलँग, चन्दन का पालना, सब निवाड़ से बने है
जिस पर बैठकर मनुष्य स्वर्ग तक पहुँच सकता है
मजदूर का कभी न थकने वाला मुँडासा घास लकड़ियाँ लाता है
कपड़ा गिट्टी के लालच में अम्मा दूर से उसकी चाल पहचान लेती है

नया ओढ़ना नया मुँडासा लाल सालू
रजाई का लिहाफ और खेस व चद्दर सब नये हैं
नई बैसाखी नई दिवाली पर घर में नया चर्खा आता है
ऊँची पहाड़ी पर खेतों खलिहानों में
सफेद कौड़ी की तरह कपास के फूल खिलखिला रहे है

बिनौलों को दो हिस्सों में बाँटकर जब कपास निकलती है
तब बरफ़ की तरह धरती पर धीरे-धीरे पाँव रखती दुलहिन-सी लगती है

धुने की कभी न थकने वाली धौंकनी
कपास को एक जान कर देती है
पहले ही वार में कपास बेहोश हो जाती है
दूसरे वार में उसकी जान निकल जाती है
फिर मेंहदी वाले हाथों से इसे छूने की रस्म होती है

तब कोई इसे पूनी कहता है कोई गोड़ा कहता है
चरखे के चकले पर सफेद तारों का गला चढ़ता है
खड्डियों पर चढ़कर जुलाहों के हाथों से उलझता है
कपड़े से तन ढँकता है, हमारी इज्जत बड़ी पुरानी है
मेरे बच्चे का इतना-सा ही कुरता है
इतनी ही कहानी है।

पिछले वर्ष

पिछले वर्ष टहनियों से झूल-झूल कर
सहेलियों के साथ वरखा गीत गा-गाकर
झरनों के संग-संग दौड़ा करती थी
टहनियों को परस्पर बांध-बांध कर मुसीबत डाल देती थी
तव मैं ये न जानती थी
वृक्ष पत्ते क्यों झाड़ते रहते हैं।

कुछ मेमने कुछ बकरियाँ पाल रखी थीं
चारों तरफ से आते बुलावों में कहाँ जाऊँ
ये निश्चय करना कठिन होता
यहाँ आ वात कर, यहाँ आ कहानी सुना
पर मुझे सारा दिन साजन के बुलावे का डर रहता था
जाने कब जल्दी में सँदेशा आ जाए
तव मैं यह न जानती थी

वृक्ष पत्ते क्यों झाड़ते रहते हैं।

मेरे देखते-देखते कितने ही पत्ते झड़े
सुनो-सुनो, धरती पर गिरकर झुलस गए
उनकी कंचन-सी काया मिट्टी हो गई
नंगे वृक्ष देखकर कभी-कभी मुझे हँसी आती
मैं कोई दर्दनाक पहाड़ी गीत गाने लगती
तब मैं यह न जानती थी
वृक्ष पत्ते क्यों झाड़ते हैं।

सखि कुछ दिनों में नये पत्ते आ गए
नंगे वृक्षों पर बदली की तरह छा गए
पहले पत्तों का किसी को ध्यान भी न आया
लेकिन तब गाए गए दर्दनाक गीत का
सुर हवाओं में है।
फिर फूल आए चाव से रहने लगे
तब मैं न जानती थी
वृक्ष पत्ते क्यों झाड़ते हैं

आज चारपाई पर पड़ी हूँ तो याद आया है
साजन ने मुझे क्यों बिसार दिया
इस सोच में घुली जा रही हूँ
पिछले वर्ष पत्तों को देखकर मन उदास हुआ था
आज अपने ही ऊपर दया आ रही है

मैं भी पत्ते की तरह ही साजन के
हाथों से गिर गई हूँ।
आज मुझे मालूम हो गया
वृक्ष पत्ते क्यों झाड़ते हैं।

चरखा

सासजी ने मुझे चरखे की रखवाली के लिए ब्याहा है
फिर मेरी रूह खेतों की ओर क्यों दौड़ती है

उभरता-उभरता धागा टूट जाता है, पूनी गिर पड़ती है
कलेजे का दर्द दुगुना हो जाता है
ननदजी का ताना मरोड़ के रख देता है
फिर मेरी रूह खेतों की ओर क्यों दौड़ती है

नाश्ते के समय चरखे की माल क्यों टूट जाती है
दोपहर का खाना खेत में जाता है तो क्यों चरखा बन्द हो जाता है
मीठे-मीठे गुस्से से गोरी चरखे की कौड़ियाँ तोड़ के फेंकती है
फिर मेरी रूह खेतों की ओर क्यों दौड़ती है

दिन ढलते जब बछिया रँभाने लगती है
आकाश में पक्षियों का कलरव होता है

उस समय गोरी पूनी को हाथ से छूटने नहीं देती
फिर मेरी रूह खेतों की ओर क्यों दौड़ती है

रात होने से पहले ही फिर चाँद चढ़ जाता है
किसकी प्रतीक्षा में घूँघट जरा-सा उलट जाता है
अब गोरी मिट्टी का फरश क्यों कुरेदती है
फिर मेरी रूह खेतों की ओर क्यों दौड़ती है

वेरी का वृक्ष

ये वेरी का वृक्ष इसकी छांव ठंडी शीतल है
जैसे शिशु को उसकी माँ ने आँचल में लपेटा हो
मेनका द्वारा त्यागी गई सृष्टि को जैसे
अपने पंखों से चिड़िया मोर कौए ढँक रखें
छोटे-छोटे हाथों से सकोरे भर-भर कर
इस ठंडी वेरी को मैं पानी देती रही
आहिस्ता आहिस्ता बढ़ते-बढ़ते ये ऐसे बढ़ी
जैसे तेरह चौदह सावन बीतते कन्याएँ बढ़ती हैं

चिड़ियों ने टहनियों पर डेरे लगा लिये
बहार में तोते आ-आकर कितने ही चक्कर काट जाते
कच्चे पक्के बेरों की टिकटिक लगी रहती
मनुष्य के पहरों की उन्हें चिन्ता न थी
पतझड़ में देखते-देखते ये वेरी सूख जाती

पक्षी उड़ जाते सुन्दर बस्तियाँ उजड़ जातीं
आँगन में फैला कूड़ा सँभालना मुश्किल हो जाता
टहनियों में कुछ फँसता तो निकलता भी नहीं
काँटों में जब किसी बच्चे की पतंग उलझ जाती
तो बच्चे पत्थर मार-मार कर मुँह सिर फोड़ लेते
बेरी कभी-कभी अकेली चिन्तामग्न दिखाई देती
मुझे आश्चर्य होता, इसे किस बात की चिन्ता है

गरदन एक तरफ ढलकाए गोड़ो में सिर दिये
मालूम नहीं वह निकम्मी क्या-क्या दलीलें करती रहती
मैंने एक दिन डरते-डरते पूछा बहन क्या हुआ
ये सुनते ही वह फूट-फूट कर रोने लगी, बोली—
मेरी छाँव में कितने ही लोगों ने विश्राम किया
उनमें से कितने ही मर-खप गए
मैं और कितने दिन हूँ कौन जाने, मेरी छाँह को क्या कोई याद करेग

तुम कलम पकड़ो मेरी कहानी लिखो मुझे अमर करो
दूसरे दिन आँधी आई, बड़े जोर का धमाका हुआ
मालूम नहीं कौन टीन के नीचे आया, कौन बिजली से मरा
मैंने बाहर झाँककर देखा, बेरी जड़ से टूटकर आँगन में
सहक रही थी
सारा आँगन भर उठा था
मेरी तरफ देखकर वह मुस्कराई, रात की बात याद करवा गई
दोपहर को मनुष्य कुल्हाड़े लेकर, उसे काटने लगे

एक-एक टुकड़ा अलग-अलग कर दिया
न कोई उस मौत पर रोया न व्यथित हुआ
घायल जड़ कूड़े के नीचे पड़ी-पड़ी
बहार आने की प्रतीक्षा करने लगी

माँ की पहचान

यदि वह किसी को देखकर हँसती है
तो तेरे होंठ अपने-आप खुल जाते हैं
अगर वह किसी को देखकर गुस्सा होती हैं
तो तेरे आँसू अनायास ही ढुलक पड़ते हैं
अगर वह खटोले पर बैठी दिखाई देती है
तो तुम भी वाही पकड़कर खड़े होने का यत्न करते हो
उसे खाली बैठी देखकर तुम उसके आँचल में छुप जाते हो
जब पीढ़ी पर डालकर झुलाती रहती है तो
कितने प्यार से कसकर तुम उसका हाथ थामे रहते हो
वह भी लोरियाँ गाते-गाते तेरी आँखों में झाँकती रहती है

वह तुम्हें अकेले में कहीं छोड़कर जाए तो
तुम झाँक-झाँककर बाहर देखते हो
चारपाई के नीचे, अन्दर बाहर पिछवाड़े में

आने-जाने वालों को परखते हो
थोड़ी देर में जब वह वापिस आती है
तो तुम उसकी आँखों में जग रही ममता की
अनोखी ज्योति से उसे पहचान जाते हो

मन उसका है ये छोटे-छोटे हाथ उसीके हैं
आशा से भरी झाँकियाँ उसीकी हैं
मुँह में डाले हुए छोटे-छोटे पाँव
और काली बिखरी लटें सब उसीकी हैं।

गीत

भगवान् मुझे, गर्मी का मौसम दो, दुःख सुख दो
परन्तु मैके से हमेशा मुझे ठंडी हवा आए
सुख का संदेशा आवे

कोई उड़ता पक्षी कभी मेरे घर के ऊपर से गुज़रे
या कोई योगी भिक्षा माँगता हुआ आवे
मेरी माँ का कोई संदेशा हो तो यही हो
कि तेरे भाई राजी-खुशी हैं।

ससुराल जाती बेटियों का मन कौन देख सका है
फिर आने की आशा कब है कौन जाने
मन छोटा-छोटा होता है, गले में कुछ फँस गया है
मेरी भाभी को ज़रा सी खरोंच भी न लगे

माँ मुझे पहाड़ों में रहने का चाव है
मुझे पहाड़ों की ठंडी हवा भेज दो
जो साथ में चंपा की महक भी लाए
मुझसे चंबा शहर का सुख संदेशा कहे

गाड़ी दौड़ रही है गलियाँ दूर हो गई हैं
बिना दोष के बेटियाँ परदेसी हो गई हैं
मैं देश विदेश की कूँजड़ी हूँ
मुझे अपने देश की ठंडी हवा आए।

ये राजा के महल क्या आपके हैं ?

मैं घर से बेघर हो चुकी हूँ
मेरी आँखों की ज्योति छिन चुकी है
मुझे अंधो करके जो फेंक गए हैं
मेरे बागीचे से जो मेरा पौधा उखाड़कर ले गए
मेरे पौधे को बौर भी पड़ा न था
मेरा साजन बहुत दूर भी तो न गया था
जिन्होंने काँपती टहनियाँ काट लीं
वे हँसुली वे दराँतियाँ क्या आपकी हैं ?
ये राजा के महल क्या आपके है

ये ऊँची दीवारें आकाश छूती हैं
महल माल व खजाने से मालामाल हैं
ये ईंटें इनका लाल रंग मन को भाता है
हमारे लहू की याद आती है

हमारे शरीर से पसीने की नदियाँ यहीं बही थी
हमारे कंधों से शहतीर यहीं उतारे गये थे
धूप सहकर जिन्होंने ये दीवारें कायम की
क्या ये उनके महल आपके हैं ?

ये राजा के महल क्या आपके हैं

बहरे कानों में भी तोप कह गई
मैं आज भी बारह बजा चुकी हूँ
मेरे चाँद के चढने की वेला है
पर गली में कोई आहट नहीं हुई
न मेरे पाँव ही दौड़कर प्रियतम को लेने गये
प्रियतम की रोज़ ही सुनाई पड़ने वाली आवाज सहन नही होती
आधे रास्ते ही से जो घेरकर ले गई
वे लोहे की कड़ियाँ क्या आपकी हैं ?

ये राजा के महल क्या आपके है ?

जिन्होंने हमारे खून के दिये जलाकर
अँधेरी रात में उजाला किया हुआ है
चाँद का गठबंधन थामे चाँदनी हँस रही है
हमें दूर से देखती है, और हमारी हँसी उड़ाती है
जब आसमान पर आतिशबाजियाँ
और गोले छोड़े जाते हैं
तब हमारे मन के तारे टूट जाते हैं
हमारे नन्हें बच्चे जिन्हें हैरान होकर देख रहे हैं

सौन्दर्य से भरपूर वे दीवालियाँ क्या आपकी हैं
ये राजा के महल क्या आपके हैं ?

जिन्हें खोद-खोदकर हमने बीज और खाद डाले
जिनके मिट्टी के घरौंदों का गँदला जल पिया
जिनको धूप में पानी देकर सींचा था
प्रियतम सूखा मुँह देखकर नाराज भी हुए थे
जिनके अकुरित होने पर मन खिल उठा था
और बौर पड़ने पर हमारी दीवाली हुई थी
किसी की क्रोध से घूरती आँखों ने
हमारी आँखों से पूछा
ये सुन्दर क्यारियाँ क्या आपकी हैं ?
ये राजा के महल क्या आपके हैं ?

जिस पर किसी का अधिकार हो चुका है
छोटी अवस्था से ही जिसे कोई ले गया है
जिसे देखकर नयन हर्ष से खिल उठे हैं
जिसकी याद में दिन और रात में कोई अन्तर
नहीं दिखाई देता
जिसका नाम लेकर हर कोई छेड़ जाता है
जो कब की कौल-करार किये बैठी हैं
वे आत्माएँ क्या आपकी हैं ?
ये राजा के महल क्या आपके हैं ?

मेरे पंख छोटे हैं

मेरे पंख छोटे हैं उड़ान बहुत ऊंची है
मैं आकाश को कैसे थाम लूं
चांदनी को गले कैसे लगाऊँ
सास और ननद की झूठी बातें
मैं नीची गरदन किये सुन लेती हूँ
ये झूठी तोहमतें कब तक सहूँ
अपने वतन से उड़-उड़कर
कुआंरी बेटियां मां-बाप से बिछुड़ आई हैं
यहां रेतीले गर्म मैदान हैं
वृक्षों से कोई जान-पहचान नहीं
ठंडी हवाएँ कहां से लूं
चांदनी को गले कैसे लगाऊँ
मेरे बाग मेरे पौधे कहां गये
वे लंबी पेंगें और आसमान छूते हुलारे

बाँस का बना वह तीर, वह कमान
पहाड़ों की उपत्यकाएँ और खुले मैदान
सब क्या हुए,
बेगानी गलियों में कैसे घूमूँ
चाँदनी को गले कैसे लगाऊँ।

पाहुना

सृष्टि की गोदी में मैं नया पाहुना बनकर आया
अम्मा के घर बिना जरूरत एक खिलौना बनकर आया
कितने छोटे-छोटे मुँह का दूध और पानी मैंने छीन लिया
माँ की हड्डियों का रस रो-रोकर चूस लिया
बापू को चिन्ता लग आई, अम्मा के घर आशा जन्मी
मेरी पीढ़ी की चूल पकड़कर भैया साँस छोड़ता लम्बी
अम्मा ये कहाँ से आया, इसके हाथ बड़े छोटे है
छोटा-सा ही इसका मुँह है बात कोई भी समझ न आती
सोमा (गाय) के घर छोटी बछिया, भूरी (भैंस) हमको दूध न देती
ब्रह्मा को भी देखो लोगो बिधना कोई बुद्धि न देती
चाँदी का एक सुन्दर चन्द्रमा, अम्मा ने इसके गल डाला
सेती सरैयाँ राह में बोई, डायन कोई न घर में आए
एक तरफ लटकती मेरी गर्दन पकड़कर मुझे खिलाती
छोटी सी, यें बोबो (दीदी) मेरी, बूढ़ी ममता को शरमाती
मुझे लोरियाँ देते, दादी माँ को कौन वक्त याद आया
बोलीं बड़ा भोला बड़ा अच्छा था बेटा हमारा पिछला समय !

अमावस्या की हँसी

न कोई ताजा वाती वाटूँ
न कोई दिया जलाऊँ
न अँधेरे में कोई 'दीनी' ढूंढूँ
वह देखो संझा घिर आई
छुत छुत करते अँधेरा आया
वाँ वाँ करते रात
साँ साँ करते आँधी आई
चाँद न खिड़की खोले
साँय साँय कर हवा विलापे
कान के परदे फाड़े
वृक्ष अकेले नीचे गिर गये
आकाश को बढ़ते-बढ़ते
लौट लौट कर गिरें टहनियाँ
घायल होकर पौधे

थर-थर कांपें पत्ते डर से
झरने साँस रोक लें
कैसी रात डरावनी आई
मन कांपे मन धड़के
पाँव तले दहलीज़ भी डोली
साँस खत्म होती है
हवाओं की ये चीख लगे
ज्यों डायन कोई विलापे
वृक्षों के तने यों कड़कें
हड्डियाँ ज्यों कोई चबाए
शोर को आँधी तोड़ के खाए
आँख में भर जाए रेत
जंगल बियावान उजाड़े
बिलखें तड़पें खेत
कहीं न कोई वाती मचले
कहीं न दिया (दीपक) डोले
कही न उठता धुआँ मैला
कही न कोई बोले
ममता के झरने सब सूखे
बच्चा कोई न रोए
कहीं न पुन्नू दे आवाजें
सस्सी बाट न जोहे
लंबे भूत मशान डराती
वृक्षों की परछाइयाँ

काँटे चुभने पर लगते हैं
तेज नाखून किसी के
अपना ये आँचल उड़ता
तो कोई खीचता लागे
गरदन घुटती जाए
दाएँ वाएँ देख न पाए
नीला गहरा वड़ा भयानक
बादल दौड़ा जाए
जैसे सागर प्रलय की वेला
गरजे आहें भरे
इस आकाश में भूल से कोई
पक्षी नहीं है साँई
कोई न कूंज अकेली उड़ती
न कोई पक्ति में जाती
आज मेरा भी मन न करता
दूर आकाश में घूमूं
इसकी सारी चाँदनी ले लूं
इसकी आँख निका लूं
अपनी कोमल बाँहों में
भर लूँ इस आकाश को
मन नही करता भूलने को
इस अमावस्या की रात को

गीत

उड़ते जाते पंक्षियो मेरा संदेशा ले जाओ
ऐसे कहना, गोरी पनघट पर मिली थी
उसका जो हाल है वह तुम आकर देख जाओ
किया हुआ वादा निभाओ

यों कहना, गोरी मिट्टी लाती मिली थी
चिट्ठी में कही भी मेरा नाम नही लिखा
मेरी आँखों का दरद उन्हें पढ़कर सुनाना

यों कहना, गोरी देहरी पर मिली थी
वैरी तेरा सुख वहाँ माँग रही थी
उनका सुख संदेश कहना

ऐसे कहना, गोरी पहाड़ पर मिली थी

खेतों में मकई के भुट्टे लगे हैं
अपने हाथों से आकर कटवा जाओ

ऐसे कहना, गोरी नदिया के घाट पर मिली थी
तुम्हारा विछोह दुनिया से कैसे छिपाऊँ
मेरी बात मन से लगाना

कहना गोरी गली में मिली थी
मैली चादर में कुछ बँधा हुआ था
सीधा उनको भिजवाना

डोगरी

मेरा बाबुल बेटियों का बाप है
इसकी सोलह बेटियाँ हैं
इनके ब्याहने की चिन्ता
उसे रत्ती-भर भी नही है
ये बेटियाँ भाषाएँ हैं
इनका बाबुल भारत है
हिन्दी सबसे बड़ी बेटी है
मेरा नाम भी इनमें आता है
आज मेरे कितने प्रेमी हैं
मेरे अनगिनत पुजारी है
पहाड़ी धुनों में जब ये राग छेड़ते हैं
तो दुनिया अचम्भे में भर जाती है
मैं पहाड़ों में पली-बढ़ी हूँ
मैं झरनों में तालाबों में नहाई हूँ

मैं मेलों में दंगलों में बोली गई हूँ
मैं आवाज़ देने में, गीतों में गूंजी हूँ
मैं बहुत पुरानी हूँ
मुझे दुनिया के शोर में खो नहीं देना
कवि दत्तू ने मेरा गुण-गान किया था
कवियों ने मेरी नब्ज़ पहचान ली है
इन बहनों से मैं छोटी हूँ
जब से बड़ी होने लगी हूँ
माँ मुझे देखकर बड़ी खुश होती है
अब मुझे विश्वास हो चला है
मेरे साधक मुझे मेरा स्थान दिलाएँगे
मुझे मान्यता मिलेगी
डोगरे अपना ऋण चुकाएँगे ।

सूर्य की पहली रश्मि से पहले भाग जाती है
फिर लाचार शाम को आ पहुँचती है
ऐसे कहर पर शवनम रोज रोती है।

सुहानी हवा बड़ी ठंडी है जीव काँपता है
जिन्दगी का वोझ धीरे-धीरे घटता जा रहा है
जिन्दगी के सफ़र की जवानी एक सुन्दर पड़ाव है
इसके वाद मनुष्य इसकी याद के सहारे थामता है
मृत्यु के चढ़ रहे जहर पर किसी की नजर नहीं पड़ती।

बदलते चेहरे

माँ, ये बदलते चेहरे मैंने नहीं देखे
मैं तो परदेसिन हूँ, राम ने बसेरा दूर बनाया है
बिट्टू और रानी को बचपन में देखा था
आज वह चाँद छूते-छूते सयानी हो गई है
सौ बल खाती चाल इसकी कैसे पहचानूं
यह और की और हुई क्या याद करूँ मैं
चंचल आँखों में लज्जा के पहरे बैठे
जब न आए पास न दूर से मुझे बुलाए
इसके साथी मुझसे तो अच्छे ही हैं माँ
ये बदलते चेहरे मैंने देखे।

मेरी आँख में यादें डोलें लहरें बनकर
पिछले रंग भी गाढ़े घोलें मुझे दिखाकर
मुद्दत हुई पहाड़ों पर बरसती बरखा देखे

पुरवैया झूले गोरी चरखा काते
चैत्र चतुर्दशी के मेले में गाएँ गवरू छैले
इसके वस्त्र है उजले उसके बहुत ही मैले
बावड़ी पर हँसी के बादल छाए हैं
ये बदलते चेहरे मैंने नहीं देखे।

कल की वह मासूम शक्ल अब रौब में आई
बचपन की वह गीली चितवन लोभ में आई
मीठी वह आवाज आज कर्कश लगती है
प्यार की वह दृष्टि बड़ी कड़वी लगती है
वह 'मैन्नु' आज है माणिक कैसे पहचानूं
कौन यत्न से बीते दिन मैं मोड़ के लाऊं
जिन पर ज़िन्दगी के सभी वर्ष न्योछावर हैं!
ये बदलते चेहरे मैंने नही देखे।

घोंसला

तेरी बैठक बड़ी सुन्दर है
इसमें ये चित्र बड़ा ही शोभा देता
तिनके-तिनके से सँवारी कोई नारी मूर्ति
जिसके नयन प्रतीक्षा में हैं
उस घोड़े की पाँव की आहट के
जो कभी नहीं आएगा
इस चित्र में मढ़ी जिसको सुन्दर सुहागिन
देख रही है।
कोने में ये क्या रखा है
सखि घोंसला ?
आ हा हा
ये होगा सब्ज बेरी की टहनियों के संग लिपटा
पीला
मैले पात्र की तरह

लटक रहा है
तीला तीला जोड़कर
चिड़िया ग्रौर चिड़े ने बड़े प्रेम से
इसको कभी बनाया होगा
आँगन बुहार-बुहारकर थक गई गोरी की झाड़ू
ये उसके तीले
पीले-पीले
किसी कन्या के गुड्डे के बालों की लट चुराई हुई
ये उसके धागे
सब्ज और लाल
किसी कपास के पौधे का है सजा बिनौला
ये उसकी शोभा
ये घर तो कोई ताजमहल है
किसी कान से मिट्टी या मकोल सफेद मिट्टी लाती कोई गोरी
इसके नजदीक कमर पर हाथ रखकर
थोड़ा विश्राम लेने के लिए रुकी होगी
उसे देखकर चिड़िया का मन काँपा होगा।
उसके जाते ही चिड़िया ने जो
आराम की साँस ली होगी
इसमें से वही साँस निकल रही है
तुम्हारी बैठक तो सज गई
पर इस घोंसले में मिट्टी का जोड़ बिठाकर
तुम किसे छल रही हो
ये घर तो इनका घर नहीं है

पुरानी कहानियाँ हम किसे सुनाएँ

आसमान एक कदम पर था; और थामने की इच्छा थी
ये दस्तियाँ नुमायश की तरह थीं, और चाँदनी मुकैश लगती थी
यह दुपट्टा अपना था, वह गोडनू अपना था
पोशाक लुभावनी थी, किनारी और बाँकड़ी से जुड़ी हुई
शहर बड़ा ही सुन्दर था, हर लम्हा निडर था
कली-कली जवान थी, गली-गली से पहचान थी,
अब कोई नहीं पहचानता
कोई भी नहीं जानता, वे लोग ही नहीं रहे
हर रात सौदाई थी, चाँदनी ही चाँदनी थी.
यह श्रीनगर के रास्ते के दो क़स्बे कुछ, बटोत थी,
कहीं भी पाँव न जमते थे
तवी और चिनाब का पानी रंगीन था, छोटा कमरा बंगला लगता था
छोटे-छोटे जलाशय चनाब लगते थे, डूबने को मन होता था
जमीन पाँ मानो बिछावन था आसमान रंगरेज लगता था

कदम-कदम लाचार था, हवाओं पर सवार था
ये झरने नहीं पहचानते
ये तो मुझे नहीं जानते, वे लोग ही नहीं रहे
पहाड़ों के ये किनारे, कटे हुए सिलसिलों की तरह
इन पर उगी हर जड़ी अपनी थी, घड़ी-घड़ी अपनी थी
जामुन का दरख्त जवान था, बेल का वृक्ष मिलने का चिह्न था
'दरेंक' सुन्दर थी, 'फुम्राफड़ी' बेरी बेरों से सजी थी
कितने सुन्दर उसके बेर थे, बाँटने पर मानो कहर टूट पड़ता था
वृक्षों पर बौर था, जमीर, किम्ब और करीर सजे थे
ये पहाड़ियाँ नहीं बोलतीं
ये भेद नहीं खोलतीं, वे लोग ही नहीं रहे।
बसन्तर नदी की दौड़ थी, एक-एक लहर निडर थी
देविका नदी की बाढ़ें थीं या वृक्ष थे या जंगल थे
बड़े अजीब लोग थे, बड़े गरीब लोग थे
आपस में प्यार था, प्यास थी, फूलने-फलने की आस थी
वह गगरी अपनी थी, वह डोरी अपनी थी
बड़ा सुन्दर पानी था, मानो माँ का दूध हो।
अब कोई दही नहीं बिलोता
अब कोई बोलता नहीं, वे लोग ही नहीं रहे

गीत

मन में एक हूक-सी उठी
एक चुभन-सी हुई
इस बसी हुई बस्ती में
अपना भी तो कोई हो,

कोई मेरा गीत समझे, कोई मेरी रीति जाने
कोई मेरी बोली बोले, कोई मेरी नीयत जाने
सच न हो तो कोई सपना ही हो
कोई अपना भी तो हो

गैया के बछड़े के मुँह की, मोर की सुन्दर चोंच की
कोई गिलमू की बात हो, कोई कुञ्जू के गीत की
अपरिचित नामों में कोई पहले सुना नाम भी हो
कोई अपना भी तो हो

कोई संतोष होता, कोई पीछे बात करने वाला होता
सब बेगाना आलम है कोई तो कुरेद होती
मुझे देखकर गद्‌गद्‌ हो जाए कोई ऐसी जगह भी तो हो
कोई अपना भी तो हो

चैत की हवा

ये हवा चैत की ये रस खेत का
मुझे पीने दो ना, मुझे जीने दो ना
आकाश में कहीं दूर चमकता सूर्य
किसी पोटली में गिरवी पड़ा है
जैसे कोई थका हारा मनुष्य
समय की रवानी की मिन्नत कर रहा हो
बहते झरनों में चैत मास दौड़ रहा है
बैसाखी आ रही है, रेत हँस रही है
मेंहदी और पायजेब के अधीन कुछ सुन्दर पाँव
इसे छू जायेंगे इसे छेड़ जायेंगे
मुझे पीने दो ना
मुझे जीने दो ना

सुनहरी हैं गेहूँ की बालियाँ, सब्ज है सरसों

किसी अन्याय को स्मरण न करना
चड़ेयाई, रियासी, दमाना ग्रौर जगानूं में (गाँवों के नाम)
ये दुखी अकेला और थका हारा मनुष्य
ये कुए में झांके पर सूरत न देखे
ये बात न समझे ये इशारा न देखे
सखि इसका क्या दोष है मुझे बताओ
मुँह फेरकर यों न हँसती जाओ
मुझे पीने दो ना
मुझे जीने दो ना

ये गीतों के लोभी, ये राग बनाने वाले
ये पहाड़ों के भेदिये ये भाग्य बनाने वाले
ये देश के रखवाले ये अमन के भाई
वह धुर उत्तर में मेरा बाँका सिपाही
मुँह से 'चन्न' गाता है दृष्टि सतर्क है (डोगरी लोक-गीत)
मन में मेरी याद है, आँख में बाढ़ है
इसकी केसरी पाग का शमला मारने वाला है
ये बाँका सिपाही सब पर भारी है
इसकी चाल देखूँ, इसका सुख माँगूँ
मुझे जीने दो ना
मुझे जीने दो ना

ये सब मेरा

ये बल खाते मकई के पौधे
सिर उठाती गेहूँ और नाचती सरसों मेरी है
यहाँ फिरता मोर का ये निडर जोड़ा मेरा है
वृक्षों के नीचे टहनी से लिपटी इक चादर
जिसने अपनी गोद ली है
सोया-सोया छोटा बच्चा मेरा है
ये भी खेत वे भी खेत
इनमें बहता बल खाता ये ठंडा झरना
झरना नहीं
ममता की सीर है
जो सींचती है लहलहाते मेरे पौधे, मेरा है
बैलों के संग जूझ रहा वह नगा मानव
सिर पर झाड़न, कमर में लँगोटी, हाथ में 'पंजाली'
वे वह स्वयं हैं वे मेरे है

इस खेत में टोकरी भर जो गोबर फेंके
पीली चादर मैली है पर रंग गूढ़ा है
हाथों का वह सुन्दर 'मरीदा' (गहना)
भारत उतारते हो, छन्न करके वज उठता है
भरी दोपहरी में किसान की जो साथिन है
गेहूँ काटते, वह मैं हूँ।
बकरी के मेमनें चराकर जो बच्चा शाम को लौटता है
वह भी मेरा है।
इन खेतों की रखवाली करने वालों की
मैं भाभी हूँ
आज आखिर ये गेहूँ, इसकी बालियाँ
दूर तक फैला ये विस्तार
यहाँ दिखाई देता कच्चा घर-बार
जो विश्वास प्रेम और एकता से खड़ा किया गया है
मेरा अपना है
सब मेरा सब-कुछ मेरा मेरा अपना है

तलब

तलब मथती है
तलब छीलती है
तलब छानती है
तलब लाती है मुझे तुम्हारे पास, तुम्हें मेरे पास
जब एक राह में दो व्यक्तियों के गुजरने की राह नहीं होती
शाम घिरने से हर रोज जरा-सा पहले
मेरी ड्योढ़ी की दहलीज पर
जब रोशनी होती है
जब सामना होता है
ढलते दिन की रश्मियाँ रहकर
मेरे पाँव के पास आकर विश्राम लेती हैं
तब यों लगता है
जैसे सब जगह आग लग गई हो
यही रोशनी है

जो रोज आती है
मेरे पाँव छूती है
मुझे पूछ-पूछ रहती है
तुम क्यों खड़ी हो
जिसके लिए खड़ी हो
कोई आया है क्या ?
तेरे पास क्या है
मेरे पास क्या है
लिखा हुआ वर्क़
रंगा हुआ वर्क़
मिटा हुआ वर्क़

तेरे लहू के साथ
मेरे लहू के साथ

चाव

मुझे था चाव जो मैं हवा होती।
तो तेरे खेत की कोंपलें हिलाकर भाग जाती
बड़ी अकड़ से बाजरे की बालियाँ खड़ी थीं
बड़ी मिजाज से पीली, एकदम भरी हुई लदी हुई
ये गेहूँ
जैसे पति ने अपनी लाडली गोरी को
पाँव से सिर तक सोने से लाद दिया हो
या वसन्त के आगमन पर माँ ने
अपनी लाडली को पीला रंग दिया हो
वैसे ही ये कनक मस्ती में हैं
मैं गुजरती, पलक झपकते उसे हिला जाती
उसके तन-मन पर छा जाती
यदि मैं हवा होती
दिये की रोशनी में शरमाई आँख

जिसमें बाढ़ है
इस बाढ़ में एक बन्दूक दिखाई देती है
जो ठंड से अकड़े हुए तगड़े हाथों से
इसके कन्त ने पकड़ी है
निशाना उस साए की प्रतीक्षा में है
जो इस आँगन में आए
उसकी इस बेबसी को देखकर
मैं ताक में रखे दिये पर
अपना आँचल डालकर बुझा जाती
उस पर आने वाली वह घडी शर्म की टाल जाती
जो मैं हवा होती
पहली खिड़की से उड़कर
कानों के कुण्डल हिलाकर भाग जाती
पुरमंडल की देविका नदी की बाढ़ और गहरी हो जाती
ऊपर के सिरे पर पड़ा जलाशय नीला नीलम-सा हो जाता
मैं डूब नहीं सकती
जो हवा होती
जो मैं हवा होती तो बादल के संग प्यार करती
सतरंगी पींग पर बैठती
उसके इशारों से झूलों से यहाँ आती वहाँ जाती
मुझे कौन पकड़ सकता था
बादल भी भ्रम में ही रहता
मेरा कोई अन्त न पा सकता
जो मैं हवा होती मुझे चाव था !

चाव

मुझे था चाव जो मैं हवा होती।
तो तेरे खेत की कोंपले हिलाकर भाग जाती
बड़ी अकड़ से बाजरे की वालियाँ खड़ी थीं
बड़ी मिजाज से पीली, एकदम भरी हुई लदी हुई
ये गेहूँ
जैसे पति ने अपनी लाडली गोरी को
पाँव से सिर तक सोने से लाद दिया हो
या वसन्त के आगमन पर माँ ने
अपनी लाडली को पीला रंग दिया हो
वैसे ही ये कनक मस्ती में हैं
मैं गुजरती, पलक झपकते उसे हिला जाती
उसके तन-मन पर छा जाती
यदि मैं हवा होती
दिये की रोशनी में शरमाई आँख

जिसमें बाढ़ है
इस बाढ़ में एक बन्दूक दिखाई देती है
जो ठंड से अकड़े हुए तगड़े हाथों से
इसके कन्त ने पकड़ी है
निशाना उस साए की प्रतीक्षा में है
जो इस आँगन में आए
उसकी इस बेवसी को देखकर
मैं ताक में रखे दिये पर
अपना आँचल डालकर बुझा जाती
उस पर आने वाली वह घडी शर्म की टाल जाती
जो मैं हवा होती
पहली खिड़की से उड़कर
कानों के कुण्डल हिलाकर भाग जाती
पुरमंडल की देविका नदी की बाढ़ और गहरी हो जाती
ऊपर के सिरे पर पड़ा जलाशय नीला नीलम-सा हो जाता
मैं डूब नहीं सकती
जो हवा होती
जो मैं हवा होती तो बादल के संग प्यार करती
सतरंगी पींग पर बैठती
उसके इशारों से झूलों से यहाँ आती वहाँ जाती
मुझे कौन पकड़ सकता था
बादल भी भ्रम में ही रहता
मेरा कोई अन्त न पा सकता
जो मैं हवा होती मुझे चाव था !

गीत

ये शाम रंगीन तो कम है, उदास ज्यादा है
आसमान की लालगी किसी बेजुबान के खून की तरह है
जिस आकाश के उस पार कोई छाननी से छान रहा है
न यहाँ कोई जानता है, न बूझता है
आकाश में चाँदनी कम है, 'भड़ास' (धुआँ) ज्यादा है
ये शाम रंगीन कम है
मन्दिर के बन्द दरवाज़े पुजारी खोल रहा है
भगवान् की चौकी पर अँधेरा है गुबार है
एक कुंवारी कन्या धूप और बाती जलाती है
बाती की लो उजली कम है, निराश ज्यादा है
ये शाम रंगीन कम है।
जम्मू की रात एक शीतल स्वभाव की स्त्री की तरह है
चंपा और चमेली में हर रोज नई बात है
चाँद आज पीला है उदास इसकी चाँदनी
कलेजे में दर्द कम है, खालिश ज्यादा है

अभिसारिका

जब मैं घर से निकली
साँझ थी कुछ लालगी सी थी
जैसे अधजगी गोरी की आँख में नींद के लाल डोरे हों

जब मैं फिर चली तो आकाश तारों से जड़ा था
जैसे जीजा को पहले दिन उसके ठहरने के स्थान पर
सालियों ने घेर लिया हो

जब मैं घर पहुँची तो आकाश पर एक ही सितारा था
जैसे साँवले रंग की गोरी की नाक में हीरे की
लौंग झिलमिलाए

सितारा ये मुझे डूबता लगा
धड़कते मेरे सीने में ये टूटता लगा
मेरी आँख की पोर में ये चुभता-सा लगा।

मंज़िल

जब कभी कहीं मैं अपने घर में अकेली होती हूँ
या स्टुडियो के बन्द कमरे में
तभी एक मंजिल मेरे पास आकर रुक जाती है
इशारों से मुझे बुलाती है
और स्वयं पीछे-पीछे होती जाती है
ये कैसी मंजिल है ? इसके आने पर मैं खुश भी होती हूँ
इसकी प्रतीक्षा भी करती हूँ
इसकी स्मृति मेरे अकेले क्षणों का बोझ भी ढोती है
इस मंजिल का कोई पता-ठिकाना नहीं है
फिर भी उसके साथ जाने का लालच होता है
मेरा ये लालच जब भी सीमाएँ तोड़ जाता है
तब मैं पकड़ लेती हूँ डर के साथ
जोर से अपना आँचल
कहीं मंज़िल पर जाते-जाते ये पड़ाव भी हाथ से
न निकल जाए।

कुछ प्रश्न

मन धड़का है या कोई काफिला गुजर गया
आज किस जमाने की याद मुझे डंक मार गई
किस सरोवर से कोई मछली तड़प कर निकली है
किसी की रूह कौन टहनी पर टाँग गया है

आँख रोई है या सावन की बाढ़ आई है कहीं
साँझ हुई है या बहारी बादल छाया है कही
कौन से कुए में डोरी आज फिर काँप गई
घड़ा डूबते-डूबते कोई नजर आया है कहो

आँख सकुचाई है या सोच की निराशा है
कोई स्थान ग्रहण करना है या कोई छोडना है
मेरी तुम्हारी बात कुछ खास बड़ी भी नही थी
कुछ तो सच भी था, कुछ मेहरमों की कहानी है

किसी पवन ने अँगड़ाई ली है या कोई वृक्ष झूला है
कोई सिपाही गुजरा है या कोई दरवाज़ा खुला है
कलेजा है या कोई रस्सी वटी हुई है
जब भी एक बल खुला एक दर्द-सा उठा

किसी ने निश्वास छोड़ा या शमशान सूक रहा है
विजली चमकी है या फिर कोई झूठा वादा कर गया
देखो उसकी नज़र में ऐसी कोई बात थी
कि उसको देखते ही कोई सिर से पाँव तक काँप गया

शहर है ये या कोई सहारा है वियावान है
पवन रोकी है किसी ने वृक्षों में सुनसान है
घर खड़े हैं ये या साए यमदूतों के हैं
साँस ली है किसी ने या वोला शमशान है।

प्यार है ये या किसी पहाड़ी की ऊँची चोटी है
मिन्नतें है भीख है दया है या वासता है
प्यार करना है तो थोड़ा दर्द भी पैदा करो
दर्द जब तक हो नहीं ये रोग कहाँ जाता है

दिन निकला या योगी ने समाधि खोली है
साँझ घिर आई है या कोई डोली निकल गई है
कोई कोयल वोली है या कोई बच्चा हँसा है
या कोई डोगरों की भाषा बोलता हुआ निकल गया है

तेरे घर में कुछ फूल रख आई हूँ

फूल एक मोतिए का एक फूल चंपा का
गुलाब का फूल ज़रा-ज़रा काँप रहा था
चमेली का फूल तो डर से पीला पड़ गया था
उसे देख दुविधा में पड़ी मुझको और दुविधा पड़ गई थी
पीले फूलों में मानो हल्दी मली हुई थी
कुछ उदास कुछ बीमार लगते थे
किसी को जैसे बड़े ज़ोर की नींद आई थी,
कुछ ऐंठ गये थे, मानो मिरगी पड़ी हो
अन्दर साफ था, चाँदनी की तरह उजला था
सफेद चाँदनी में सफेद बिछावन था,
पलंग के बीचोंबीच ढेरी लगा आई हूँ
तेरे घर में कुछ फूल रख आई हूँ।

फूल जब तोड़े मैंने जरा-जरा अँधेरा था

रात की अनिद्रा से बहुत थका हुआ था
आकाश और जमीन पर अजीब-सा ठहराव था
उसे भी डर था और मुझे भी डर था
अँधेरे में डर के मारे कितने ही काँटे मुझे चुभ गए
कुछ तो सिर्फ़ लगे कुछ उँगली में धँस गए
कुछ लहू फूलों से लगा रह गया है
किसी किसी पत्ते को हाथ लग गया है
गुलाब का लाल फूल मेरा छोटा-सा मन है
उसका मन जख्मी है, मेरा मन घायल है
जख्मों के छिलके ठीक होने से पहले उखाड़ आई हूँ
तेरे घर में कुछ फूल रख आई हूँ।

पीले फूल देखो तो मेरी सूरत देखना
मेरी उड़ान आसमान से टूटकर गिरी है
सफेद फूलों में जहाँ कोई दाग है
वे मेरी रात की अनिद्रा के दाग हैं
किसी-किसी फूल के पत्ते अलग-अलग हो गए हैं
मेरी जिन्दगी के बल भी ऐसे ही खुले हुए हैं
कोई-कोई काँटा फूल के पत्तों में अड़ गया है
कोई-कोई स्मृति कलेजे में गड़ गई है
तुम्हारे आने तक कोई फूल सूख जाएगा
मेरा-तेरा सारा सम्बन्ध समाप्त हो जाएगा
कुछ यादें आँसुओं से बहा आई हूँ
तेरे घर में कुछ फूल रख आई हूँ।

गीत

आज युद्ध जीतकर आया है
सिपाही मेरा डोगरा

हाथ में बन्दूक गले में गानी
बाँकी चितवन चाल मस्तानी
नयन कटोरे रंग आसमानी
चाँद देख इसे शरमाया है

कन्या पूजीं बकरे चढ़ाए
कब घर आए सिपाही हमारे
कलमें तोड़ीं कागज फाड़े
लिखने का ढंग नहीं आया है

जिन बैरकों में रहे सिपाही
उनके ऊपर मैं बलिहारी
छुट्टी आवें साल छमाही
याद बहुत आती है।

वर्फ़

सफ़ेद चावल बिखरे ?
सफ़ेद मोती बिखरे ?
सफ़ेद रंग गिरा ?
नहीं कुछ नही ये बर्फ़ है
विधाता ने सफ़ेद पंखों वाली कलम पकड़ कर जो लिखा
वह हरफ़ है।
ये वर्फ़ ठंडी ठार है
ये लक्ष्मण की लकीर है
इसके सिर पर जो धुआँ देखते हो
वह पहाड़ी के मन का गुबार है
निश्वास इसकी वरफ़ से भी
निकल रही है
मानो लूह भरी दोपहरी में
धूप के शोले हों

रुई के गोले हाथ में लेती
पहाड़ी के नीचे ऊपर
आँगन दालान कोने में
बरफ़ की बौछार झेलती
स्त्री मैं हूँ
जमे हुए बर्तन माँजती
स्त्री मैं हूँ
इसी एक बरफ़ की कनी मैं हूँ
जहरीले नाग की मणि मैं हूं
अपनी आग बुझाने के लिए
मुझे कब तक
दरिया-दरिया
जंगल-झाड़
खेत-खलिहान
से गुज़र-गुजरकर
कुछ दिन मुहलत के माँग-माँगकर
बरफ़ से मिलने आना पड़ेगा
कब तक पहाड़ी के हृदय से भाग-भागकर
पिघल-पिघलकर हँस-हँसकर
अपनी कभी न बुझने वाली प्यास
बुझाने के लिए
समुद्र के पास जाना पड़ेगा !

• • •